RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-07
July-2020
ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI:https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i07.041

कबीर के काव्य में व्यंग्य

डॉ0 सुभाष कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर हिन्दी विभाग राजकीय महाविद्यालय जखोली, रूद्रप्रयाग– उतराखण्ड

मनुष्य समाज में रहता है। समाज के बिना मानव की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह सामाजिक नियमों से बँधा रहता है। सामाजिक परिस्थितियाँ सदैव उसके जीवन में हलचल मचाती रहती है। कभी अपनी रचनाओं द्वारा कवि अपने व्यंग्य से समाज में जागरूकता उत्पन्न करता है। वह व्यंग्य रचना द्वारा समाज एवं व्यक्ति की दुर्बलताओं, अन्यायों एवं विसंगतियों का पर्दाफाश करके उन पर प्रहार करता है। कबीर का उद्देश्य सदैव व्यक्ति और समाज का सुधार करना ही था। इसलिए कबीर ने तत्कालीन परिस्थितियों का बोध करके उन पर अपने काव्य और व्यंग्य से कठोर प्रहार किया और अपने समय की रूढ़ियों और विसंगतियों का जोरदार खण्डन किया। व्यंग्य कविता का ऐसा अस्त्र होता हैं, जिसका प्रभाव व्यक्ति एवं समाज पर दीर्घकालिक और प्रभावात्मक रूप से पड़ता है। और यही व्यंग्य की सार्थकता है। कोई भी कवि व्यंग्य का प्रयोग तभी करता है जब हृदय बाह्य एवं आन्तरिक विसंगतियों से दग्ध हो उठता हो। कबीर का मन भी समाज की तत्कालीन परिस्थितियों को समझा और उन पर व्यंग्य किया और समाज को बदलने का एक सार्थक प्रयास किया। कबीर ने अपने काव्य में जो व्यंग्य किया। उस व्यंग्य ने समाज को नवीन दिशा और दशा प्रदान करने का प्रयास किया। महाकवि कबीरदास हिन्दी काव्य आकाश के ऐसे सूर्य थे। जिन्होंने अपनी प्रखर किरणों से समाज में व्याप्त पाखण्डों, अज्ञाानता, द्वेष, ईर्ष्या आदि के विषाणुओं को नष्ट करके उसे उदात आदर्शों की ओर उन्मुख किया।

कबीर भक्तिकाल की निर्गुण भक्ति धारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख संत,समाज सुधारक एवं महान कवि थे।कबीर की तीन रचनायें हैं

1 – साखी 2 – सबद 3 – रमैणी इन तीनों ही रचनाओं में कबीर का व्यंग्य यत्र–तत्र–सर्वत्र बिखरा पड़ा हुआ है। कबीर ने अपने सम्पूर्ण काव्य में व्यंग्य को उत्कृष्टता प्रदान की है।

कबीर की साखियों में व्यंग्य का स्वरूप

साखी शब्द का प्रयोग – गवाही या साक्षी के रूप में हुआ है। कबीर के जीवन का अनुभव अत्यन्त विशाल था। अतः उन्हें हर बात का पूरा ज्ञान था। विभिन्न परिस्थितियों में रहते हुए उन्होनें जो बातें कही उनमें पर्याप्त बल है। इसलिए भ्रमाधंकार में पड़े हुए व्यक्तियों को कबीर की यह साखियाँ सही रास्ता दिखाती हैं। साखी के छोटे–छोटे दोहों में कबीर का व्यंग्य कूट–कूट कर भरा है। विषय चाहे जो भी हो, आपकी साखियाँ प्रतिपदा पर अचूक वार करते है। समाज हो या राजनीति, धर्म हो या दर्शन, सर्वत्र यही रूप विद्यमान है। इसी प्रकार कबीर ने जाति, धर्म, भाषा तथा व्यावहारिक मूल्यों के प्रति जो तथ्य उपस्थित किए हैं। वह इतने उच्च हैं, कि कोई भी व्यक्ति उनकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता है। व्यक्ति के कुल गोत्र का तिरस्कार करते हुए व्यंग्य किया है–

"ऊँचे कुल का जनमियाँ, जै करनी ऊँच न होय।
सुबरन कलश सुरा भरा, साधु निन्दा सोय।।"1

कबीर की साखियों का रूप विधान दोहों जैसा ही होता है। इनमें विषय विस्तार का दोष नहीं मिलता है। यह आकार में छोटे होते हुए भी व्यंग्य को विस्तार देने में सहायक होते है। सम्पूर्ण संसार नाशवान है। परन्तु फिर भी हम सांसारिक प्राणी अभिमान में रहते हैं। इसी पर कबीरदास जी ने बड़े ही सटीक शब्दों में व्यंग्य किया है–

"यह तन कांचा कुंभ है, लिए फिरै था साथि,
ढ़बका लागा फूट गया, कुछ न आया हाथि।
कबीर कहा गरबियो, इस जीवन की आस,
केसू फूलै दिवस दोई, खंखर भये पलास।।"2

कबीर के समय में समाज में वर्ण–व्यवस्था लागू थी। इस व्यवस्था में ब्राह्मणों को सर्वोच्च अधिकार प्राप्त थे। तथा शूद्र सबसे निम्न श्रेणी में थे। उन पर तरह–तरह के अत्याचार होते थे। जो मानवता के लिए घोर कलंक थे। इन्हीं कारणों से समाज में ऊँच–नीच और छुआछूत का प्रचार–प्रसार बढ़ा। किन्तु कबीर आरम्भ से ही जाति व्यवस्था के कट्टर विरोधी रहे हैं। उन्होंने मनुष्य को ईश्वर की सन्तान बताकर सबको समान पीठिका पर पीठासीन किया। कबीर के प्रयासों के फलस्वरूप ही जाति व्यवस्था, वर्ण–व्यवस्था के विरोध में प्रतिक्रिया शुरू होने लगी। कबीर ने जनता की अंधविश्वासी प्रवृति को ललकार कर तथा जनता के भ्रम को तोड़कर अभिनव मार्ग का संदेश दिया। वर्ण व्यवस्था पर कबीर का व्यंग्य दृष्टव्य है–

"ब्राह्मण गुरू जगत का, साधु का गुरू नाहिं।
उरक्षि पुरक्षि करि मरि रहा, चरिउ वेदा माहिं।।"3

कबीर ने ब्राह्मणों पर प्रहार करते हुए उनकी अज्ञानताओं को स्पष्ट कर दिया है। इससे ज्ञात होता है, कि उस युग में सदाचार और ज्ञान के

स्थान पर पाण्डित्य और पाखण्ड का बोलबाला था। कबीर इस पाखण्ड के विरोधी थे। उन्होंने इसी संदर्भ में समकालीन राजाओं और उनकी राजनीतिक चाल को भी अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है। शासक और सामन्तों की स्वार्थपूर्ण लिप्सा और शक्ति के कारण जनजीवन दुःखी और आर्थिक रूप से विपन्न था। उस काल के राजा और सामन्त कितने लोभी, स्वार्थी और अत्याचारी थे। कि इसकी स्पष्ट व्यंजना कबीर की साखियों में विद्यमान है–

RRIJM 2015, All Rights Reserved

"कलि का स्वामी लोभिया, मनसा रहै बधाई।
देबै पैसा ब्याज को, लेखा करता जाई।।"4

कबीर के समय में बादशाह छोटे–छोटे अधिकारीगण तथा पदाधिकारीगण एक से अधिक स्त्रियाँ रखते थे। जिसका परिणाम विलासिता तथा दुराचार था। उदात्त सामाजिक और देशोन्नति की भावना के स्थान पर विलासिता, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष और वैमनस्य का ही अधिकार था और शासक धन और विलासिता से ही परिपूर्ण थे। इसका प्रभाव सामान्यजनों के चरित्र पर भी अवश्य पड़ा होगा। विशेष रूप से शासक वर्ग से तो जनता अवश्य रूप से प्रभावित थी। इसलिए जहाँ का राजा ऐसा हो वहाँ की जनता कैसी होगी। सोचने की बात है। कबीर ऐसे भोगी व्यक्तियों को क्षमा नहीं कर पाते। वे सीधे तौर पर उनकी आलोचना करते हैं। उनकी इस आलोचना कर्म का अस्त्र है– व्यंग्य जिसका वे भरपूर उपयोग करते हैं–

"नाना भोजन स्वाद सुख, नारी सेती रंग।
बेगि पछतायेगा ह्वै मूरति भंग।।"5

कबीर का मन समकालीन समाज की दशा को देखकर द्रवित होता था। उन्होने जनमानस के उद्धार के लिए आध्यात्मिक चेतना को स्वीकार करते हुए उसे सर्वोच्च मानवीय मूल्य के रूप में स्थापित किया था। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के कारण समाज तथा परिवार में जो अमानवीयता व्याप्त थी। उन्हें दूर करने के लिए सन्त कवियों ने कुछ विधान भी निर्मित किए तथा इन सबसे दूर रहने का उपदेश दिया। इन साधनाओं तथा विधानों को कबीर ने पहले स्वयं के जीवन में उतारा। उसके बाद ही उन्होंने उसे लोक में प्रचारित और प्रसारित किया। नैतिक मार्ग पर चलकर ही व्यक्ति इस संसार रूपी सागर से पार उतर सकता है। यही कबीर का मत रहा। व्यंग्य की भूमिका समाज सुधारक जैसी होती है। वह समाज के बाह्याचार और पाखण्ड को पूरी तरह से नकारता है। कबीर के समय एक बड़ी चुनौती और परिवर्तन का समय था। मुसलमान अपनी तलवार के बल पर अपने धर्म और संस्कृति का प्रचार करना चाहते थे। किन्तु इधर भारतीय समाज अपनी पूरी शक्ति और सामर्थ्य से उनका प्रतिरोध करता था। दोनों एक–दूसरे के विरोधी थे। इससे समाज में पाखण्डों, बाह्याडम्बरों और मिथ्याचारों का प्रचार हुआ।

उधर शासित वर्ग ने अपने नियमों को कठोर बनाया जिसके फलस्वरूप बाह्यचारों तथा कर्मकाण्ड़ों की उत्पति हुई। फलतः बहुदेववाद, कर्मकाण्ड, लोक–परलोक और स्वर्ग–नरक की भावनाओं को प्रमुखता मिली। कबीर ने समाज के पतन का विरोध किया। समाज में जहाँ कहीं भी असंगति और विरोधाभास देखा उसकी कटु आलोचना की चाहे वह राजा हो या रंक उनकी पैनी आँखों से कोई बच न सका। चाहे वह धनी हो या गरीब हो संसारी हो या त्यागी, मुल्ला हो या पण्ड़ित। मनुष्य अपनी प्राचीन मान्यताओं से ऊपर उठ नहीं पा रहा था। कबीर ने तर्क और उपयोगिता के आधार पर इनकी समीक्षा की। इस आधार पर कबीर को यह सारा संसार ही अंधा प्रतीत होता है–

"कबीर यहु जग आँधरा, जैसी अँधी गाय।
बछड़ा था सो मरि गया, उभी चाम चटाय।।"6

इसी प्रकार कबीर ने समाज में व्याप्त अन्य सामाजिक कुरीतियों, छुआछूत, बालविवाह, बहुपत्नी प्रथा आदि का ऊँचे स्वर में विरोध किया यथा–

"कबीर जै कोई सुन्दरी, जानि करै विभिचार।
ताहि न कबहुं आदरै, परपुरूष भरतार।।
नर–नारी राता फिरै, चोरी विढ़ता खांहि।
दिवस चारि सरसा रहै, अति समूला जाही।।"7

कबीर ने कनक एवं कामिनी को विषफल के समान बताया। जिसके स्पर्श तथा देखने मात्र से ही मनुष्य का विनाश होता है। जबकि हम सांसारिक मनुष्य इस भवसागर में फंसकर मोह, माया, तृष्णा आदि में ही अपना सम्पूर्ण जीवन स्वाहा कर देते है। इसी पर कबीर का व्यंग्य देखने योग्य है–

"एक कनक अरू कामिनी, छोह अग्नि की झाल।।
देखे ही तैं परजरैं, परसा हटौ पैमाल।।""8

"भौसागर जल विष भरा" राजा–रंक, योगी, सन्यासी सभी इनके वश में हैं। इससे मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है–

"कबीर हरि भगति करी, तजि विषमा रसचौज।
बार–बार नहीं पाइए, मनिषा जन्म की मौज।।"9

कबीर के समय में दो प्रमुख धर्म प्रचलित थे– हिन्दू और इस्लाम। दोनों के धर्म और संस्कृति में पर्याप्त भिन्नता थी। यही भिन्नता दोनों के संघर्षों का कारण बनी हुई थी। ये अपने–अपने धर्म और संस्कृति को ऊँचा साबित करना चाहते थे, इसी कारण इनमें मतभेद बना हुआ था। दूसरा कारण यह भी था कि स्थापना के बाद मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं पर तरह–तरह के अत्याचार किये। इनके धर्म का अपमान भी किया गया। भगवान की मूर्तियों तथा देवालयों को नष्ट किया गया। अतः दोनों में मतभेद की दीवार बढ़ती ही गई। यद्यपि कुछ शासकों ने भेद तथा द्वेष की दीवार को ढाने की कोशिश भी की। किन्तु समाज का एक बड़ा भाग इनके भेद को बढ़ावा दे रहा था। जिसके कारण विद्वेष तथा असमानता का वातावरण बना रहा। बाहयाचार को बढ़ावा देने वाले मुल्लाओं को उन्होनें बड़ी बुरी तरह लताडा है। ब्रह्मज्ञान का दम्भ भरने वाले पण्डितों पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं–

"चारि वेद पंडित पढै, किया ना हरि से हेत।
बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूँढे खेत।।"10

इसी प्रकार मुल्लाओं पर उनकी व्यंग्योक्ति है–

"काजी मुल्ला मेरे मियाँ, चला दुनि के साथि।
दिल है दीन विसारिया, करद लई जब हाथि।।"11

कबीर ने कहा भी है, कि जीवन की सार्थकता इन दोनों में व्याप्त अद्वैत तत्व को भेद बुद्धि से ऊपर उठाना है–

"हिन्दु मुऐ राम कहि, मुसलमान खुदाई।
कहै कबीर सौ जीवता, दुह में कदै न जाई।।"12

कबीर के सबद में व्यंग्य का स्वरूप

कबीर की साखी की अपेक्षा सबद में व्यंग्य अधिक निखरा हुआ है। सबद या साखी या रमैनी सभी गेय पद हैं। इनकी इस गेयता का प्रभाव पाठक और श्रोता दोनों पर ही

RRIJM 2015, All Rights Reserved

पड़ता है। पर इसका मतलब यह नहीं है, कि श्रोता या पाठक इसकी लयात्मकता के कारण वास्तविकता को भूल जाए। वही उनकी वास्तविकता को समझता – बुझता चलता है।

एक अन्य पद में उन्होंने समसामयिक स्थिति का यथार्थ चित्र खींचा है। यहां यथार्थ चित्रण में व्यंग्य का अप्रत्यक्ष रूप से दर्शन हुआ है–

''यहु माया रघुनाथ की खेलन चढ़ी अहरै।
चतुर चिकनिया चुनि चुन मारा कोई न छोड़ा नेरे।।
मौनी बीर डिगम्बर मारे जलन करता जोगी।
जंगल मांहि के जंगम मारे माया किनहुँ न भोगी।।
वेद पढ़ता ब्रह्माण मारा सेवा करता स्वामी।
अरथ करता मितिर पछाडा मल महिं डाली लगायी।।
साकता कै तू हरात करता हरि भगतन कै चेरी।
दास कबीर राम के सरनै ज्यों आई त्यौं फेरी।।''13

कबीर ने माया पर भी व्यंग्य किया है। कबीरदास जी कहते हैं। कि माया बुद्धि को ठग लेती है। तथा माया बुद्धि को भ्रमयुक्त तथा विकारयुक्त बना देती है। उनके अनुसार माया का बहुआयामी रूप है–

''माया महाठगिनी हम जानि, तिरगुन फांसि लिए कर ड़ोले,
बोले मधुर बानि।।''14

व्यंग्य आलोचना का प्रमुख अस्त्र है। जो किसी भी समाज के वर्गों, वर्णों, जातियों, और साम्प्रदायिक अवधारणाओं की आलोचना करता है। वर्णाश्रम व्यवस्था भारतीय सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख आधार है। मुसलमानों के अन्यायों, अत्याचारों, मूर्ति खण्ड़न तथा लूटपाट के परिणामस्वरूप जनमानस भी घोर अंधकार में डूब गया। अनेक कुसंस्कारों तथा कुरीतियों का समाज में प्रसार हुआ। जिसके फलस्वरूप व्यक्ति उसमें निहित सत्य, तथ्य को भूलकर बाह्यचारों और पाखण्ड़ों के भ्रमजाल में फंसकर रह गया। इन कर्मकाण्ड़ों की और व्यक्ति पूर्णरूपेण समर्पित थे। तथा इनके सम्पादन में ही अपने कर्मों की इतिश्री मान चुके थे। इसी कारण इस युग में समाज पत्तनोन्मुखी भी हुआ। कबीर तो आरम्भ से ही परम्परा विरोधी रहे हैं। उन्होंने बाह्याचारों और पाखण्ड़ों की तीखी आलोचना की। कबीरदास ने अपना सारा जीवन ही अपने समय के अंधविश्वासों को दूर करने में ही लगा दिया। पाखण्ड़ का विरोध करते हुए उन्होंने कहा–

''वे भूले पर दरसन भाई, पाषंड़ मेष रहा लपटाई।।
जीव सीव का आहनि सौना,चारिउ वेद चतुर गुण मौना।।
जैनी धर्म के मर्म न जाना ,पाति तोरि देवघर आना।।
ताकर हाल होय अधकूचा ,तब दरसन मंह जेनि बिगूचा।।''15

एक रमैणी में उन्होंने धार्मिक स्थिति के यथार्थ स्वरूप को व्यंग्य के स्तर पर साक्षी कराया है–

''सांचहि कोई न मानई ,झूठहि के संग जाय।।
झूठहि झूठा मिलि रहा, अहमक खेया खाय।।''16

कबीर के साहित्य में सभी पक्षों पर विचार किया गया है। आपके साहित्य के अध्ययन, मनन, विश्लेषण करने के पश्चात कहा जा सकता है कि आध्यात्मिकता के प्रबल प्रवाह में उनकी भौतिकतावादी प्रवृति धूमिल हैं। सामन्ती राज व्यवस्था की विकृतियों तथा विसंगतियों को भी कबीर ने इसके लिए उतरदायी माना है। उस समय समाज में एक तरफ सामन्ती व्यवस्था लागू थी। तो दूसरी और लोक व्यवस्था। आशा–निराशा, सफलता–असफलताओं के साथ ही समाज में आर्थिक वैषम्य भी अपने शिखर पर था। सामान्य जनता पैसे–पैसे के लिए मोहताज थी। सामन्त वर्ग वैभवशाली बनकर विलासिता के गर्त में आकण्ठ डूबा हुआ था। कबीर का ध्यान समाज की इस अर्थव्यवस्था की और गया। उन्होंने धन के संग्रह की प्रवृतियों को गलत बतलाते हुए संग्रही व्यक्तियों पर करारा व्यंग्य किया। वह भी समाज में समानता लाने के लिए–

''भुरूख मानुस बहुत संजोवै ,अपने मरे अवर लागै रोवै।।
ना जानै अपनौ मरे जैवे, दका दस बढ़ै अवसर लै खैवे।।
साखी अपनी–अपनी करि गये, लागि न काहु के साथ।।
अपनी करि गो रावण , अपनी दशरथ नाथ।।''17

हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच वैमनस्य और संघर्ष कबीर के समय की प्रमुख घटना थी। दोनों धर्मों की संस्कृति, आचार–विचार अलग प्रकार के थे। इसलिए उनमें अन्तर्विरोध था। वस्तुतः मध्ययुगीन समाज में अनेक प्रकार के उतार–चढ़ाव और विभिन्नताएं भी देखने को मिलती हैं। कबीर भेदभाव की इस दीवार को गिरा देना चाहते थे। उन्होनें सभी प्राणियों को एक ज्योति से उत्पन्न मानकर सबके बीच समता और प्रेम की भावना का विस्तार किया। इसी को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि–

''अन्दर जौति सबद यक नारी, हरि ब्रह्मा ताकै त्रिपुरारी।
हरिहर ब्रह्मा महतों नाउँ, तिन्ह पुनि तीनि बसाबलगाउं।।
तिन्ह पुनि रचल पिण्ड़ ब्रह्माण्ड, छब दरसन छानवे षाषंड़ा।
पेटे न काहुँ वेद पढ़ाया, सुनति कराये तुरूक नहिं आया।।
नारि मोचित गर्भ प्रसुति, स्वाग धरै बहुतै करतूति।
तहिया हम तुम एकै लोहू, एकै प्राण वियावै मोहू।।
एकै जनो जना संसार, कौन ग्यान ते भयो निनारा।''18

मध्यकालीन युग की धार्मिक परिस्थितियाँ विकृत थी। समाज में हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, जैन, नाथ, सिद्ध, योगी, भोगी, फकीर आदि सम्प्रदायों में विभिन्न प्रकार के धर्म प्रचलित थे। जिनमें मतों के अलगाव के कारण सदैव संघर्ष होते रहते थे। हिन्दू धर्म में भी शैव, वैष्णव, शाक्त, सगुण–निर्गुण आदि कई प्रकार के सम्प्रदायों का प्रचलन था और मुसलमानों में भी शिया, सुन्नी, चिश्ती एवं सुहरावर्दी सम्प्रदाय अस्तित्व में थें कबीर ने यह अनुभव किया कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बाह्याडम्बरों एवं कर्मकाण्ड़ों से जुड़े हुए है। कोई भी धर्म के मर्म को नहीं समझ पा रहा है। कबीर ने दोनों धर्मों की विसंगतियों, कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों की कड़ी आलोचना करके उनमें फैली भ्रांतियों का तर्कपूर्ण उत्तर दिया। यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता और बुद्धिमता थी। कबीर ने साधना पद्धतियों का तिरस्कार ही नहीं किया बल्कि उस पर करारा व्यंग्य भी किया है–

''बड़ों सो पापी अहि गुनानी, षाषंड़ छलो नर ज्ञानी।
ब्राह्मण कीन्हों ग्रन्थ पुराणा, कैसहु केमेहि मानुष जाना।।
एकै सै ब्रहौ पंथ चलाया एक सै हंस गोपालहि गाया।
एक सै सिम पंथ चलाया, एक सौ भूत प्रेत मन लाया।।
एक सै पूजा जैनि विचारा, एक सै निहुरि निमाज गुजारा।
कौउ काहु को हटा न माना, झूठा कसम कबीर ने जाना।।
तनम न भजि रहुं मोरे भक्ता, सन्त कबीर सन्त है वक्ता।''19

RRIJM 2015, All Rights Reserved

मध्ययुगीन समाज वर्ग, वर्ण, जाति और सम्प्रदाय में विभक्त था। समाज की व्यवस्था और संचालन सभी इन्हीं स्तरों पर होता था। सन्त काव्य की यह सबसे बड़ी उपलब्धि कही जानी चाहिए, कि उसने वर्ग, वर्ण, जाति और सम्प्रदाय की विकृत धारणाओं का सदैव विरोध किया। वे वर्ण व्यवस्था, सामंतवादी संस्कृति तथा जाति प्रथा के खिलाफ रहे हैं। क्योंकि मुसलमान विजेताओं से पीड़ित तथा पराजित हिन्दुओं के जनमानस में इतनी जागरूकता नहीं रह गयी थी कि वे उसका विरोध कर सकें। छुआछूत, जातिवाद, ऊँच–नीच, की भावना उसी दुष्परिणाम की देन है। रमैणी की एक पद में कबीर ने व्यंग्य के माध्यम से वर्ण व्यवस्था पर बहुत गहरी चोट की है। उन्होंने जन्मगत विशेषता को भी झूठा तथा व्यर्थ बताया है। कबीर का कथन है, कि यदि परमात्मा को वर्ण व्यवस्था स्वीकार होती तो फिर सब की उत्पति भिन्न–भिन्न प्रकार से क्यों होती है। यथा–

"जो तोंहि करता अरन विचारा, जन्मत तीनि दण्ड़ अनुसारा।
जन्मत सूत्र मुए पुनि सुद्रा, कृतम जनैउ डारि जग मुद्रा।।
जो सुहु ब्राह्मण ब्राह्मयी कै जाया, पेटे काहे न सुगात कराया।
कारी पियरी दुहहू गाई, ताकर दुध देहु विले गई।।
छाडु कपट नर अधिक सयानी, कहहि कबीर मजु सारंग पानी।।"
20

कबीर के साहित्य का अवलोकन, अध्ययन, मनन, और विश्लेषण के पश्चात कहा जा सकता है, कि कबीर ने अनेक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक विड़म्बनाओं को अपनी रचनाओं में प्रसंग बनाया है। कबीर की साखी, सबद एवं रमैणी तीनों ही रचनाओं की प्रासंगिकता बहुत ही व्यापक है। अर्थात कबीर की रचनाओं में निम्नवत् प्रासंगिकता हमें दिखाई देती है।

1 – कबीर की रचनाओं में बाह्याडम्बरों का खण्ड़न हमें प्रासंगिकता के रूप में दिखाई देता है।

2 – कबीर की रचनाओं में जाति–पाँति भेदभाव, ऊँच–नीच की भावना के प्रतिकार स्वरूप कबीर की रचनाओं में दिखता है।

3 – कबीर ने अपनी रचनाओं के माध्यम से तत्समय की सामाजिक रूढ़ियों जैसे– सती प्रथा आदि को भी अपनी रचनाओं का वर्ण्य विषय बनाया।

4 – तत्कालीन समय में हिन्दू और मुसलमानों के बीच के वैमनस्य और टकराव, एक दूसरे के प्रति हीनता के भाव को भी कबीर ने करीब से देखा और उसे भी दूर करने का प्रयत्न किया और इसे भी अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाया।

5 – कबीरदास ने उस समय में प्रचलित मूर्ति–पूजा का विरोध किया और कहा कि ब्राह्मणों के मन्दिर में रहने वाला भगवान और मुसलमानों की मस्जिद में रहने वाला खुदा भी एक ही है। अतः फिर वैमनस्य अथवा तनाव क्यों? इस विषय का खण्ड़न करते हुए कबीर ने कहा कि मन्दिर–मस्जिदों में भगवान या अल्लाह निवास नहीं करता है। अपितु भगवान तो हमारे अन्तरमन में बसा हुआ है। और हम उसे बाहर ढूँढ़ने का प्रयास करते रहते हैं। इस प्रयत्न को करते हुए निरन्तर दुःख और नैराश्यता को प्राप्त होते रहते हैं। इस गूढ़ विषय को भी कबीर ने अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाया है। समस्त वर्णन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कबीर से कोई भी विषय अछूता नहीं रहा है। उन्होंने सभी विषयों को बारीकी से निहारा और उसका वर्णन किया और समाज को अवश्यम्भावी रूप से प्रभावित भी किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 – कबीर वाङगमय (1998) सम्पादित : डॉ0 जयदेव सिंह एवं डॉ0 वासुदेव सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी, कुसंगति कौ अंग साखी–07, पृष्ठ–208,
2 – वही– चितावणी कौ अंग, साखी–39, पृष्ठ–115,
3 – वही– चाणक कौ अंग, साखी–10, पृष्ठ–161,
4 – वही– सुरातन कौ अंग, साखी–38, पृष्ठ–287,
5 – वही– सुमरन कौ अंग, साखी–01, पृष्ठ–19,
6 – वही– सुन्दरी कौ अंग, साखी–02, पृष्ठ–315,
7 – वही– सुरातन कौ अंग, साखी–33, पृष्ठ–286,
8 – वही– चितावणी कौ अंग, साखी–05, पृष्ठ–103,
9 – वही– उपदेश कौ अंग, साखी–05, पृष्ठ–235,
10 – वही– उपदेश कौ अंग, साखी–07, पृष्ठ–184,
11 – कबीर (2006) हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–219,
12 – कबीर वाङगमय (1998) सम्पादित : डॉ0 जयदेव सिंह एवं डॉ0 वासुदेव सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी, साधु महिमा कौ अंग, साखी–08, पृष्ठ–221,
13 – वही– सबद पद–208, पृष्ठ–264,
14 – वही– सबद पद–228, पृष्ठ–289,
15 – वही– रमैणी पद–30, पृष्ठ–55,
16 – वही– रमैणी पद–15, पृष्ठ–29,
17 – वही– रमैणी पद –78, पृष्ठ–119,
18 – वही– रमैणी पद –02, पृष्ठ–04,
19 – वही– रमैणी पद –14, पृष्ठ–29,
20 – वही– रमैणी पद –67, पृष्ठ–104,

RRIJM 2015, All Rights Reserved